ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 1 July 2020

सांख्य दर्शन में ज्ञान का स्वरूप: एक ज्ञान मीमांसीय अध्ययन।

डॉ. भरत कुमार पंडा,
सहायक प्रोफेसर
महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रिय हिंदी विश्व विद्यालय,
वर्धा,महाराष्ट्र-442001)

सारांश

भारतीय दर्शन परंपरा में सांख्यदर्शन की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है । किसी भी प्रकार विधि सम्मत अथवा श्रुति सम्मत वाक्य को विशेष आलोचना एवं समीक्षा के विना स्वीकार कर लेना सांख्य दरशन की परंपरा में विरल है। दार्शनिक परिप्रेक्ष में जो कुछ शुद्ध निरपेक्ष युक्तियों के द्वारा समर्थित, उसको निरुपण कर स्वीकार करने हेतु सांख्य दर्शन में विशेष ध्यान दिया गया है । उसी क्रम में भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में विद्यमान अन्य दार्शनिक मतवादों तथा परंमपराओं भांती सांख्य दर्शन में ज्ञान मीमांसा का भी बहुत महत्वपूर्ण स्थान है ।सांख्यदर्शन में त्रिविध दुखों का पूर्ण निराकरण हेतु तत्वज्ञान के ऊपर सर्वाधिक मपत्व दिया गया है, इस दृष्टि से ज्ञान क्या है ? उसका परिचय कितना व्याप्त है? एवं वह अज्ञान से किस प्रकार अलग है ? आदि विभिन्न प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर निरूपण करने हेतु सांख्य दार्शनिकों ने अपने मत प्रकट किए हैं।

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 1 July 2020

कुंचिका शब्द- ज्ञान,ज्ञाता,ज्ञेय, **सत्ज्ञान(प्रमा)** एवं **असत्ज्ञान**(अप्रमा)

प्रस्तावना

इस ज्ञान विषयक आलोचना के समय साधारणतः भारतीय दार्शनिक परंपरा में **'बुद्धि','उपलब्धि','अनुभव','अनुभूति','ख्याति''प्रत्यय' एवं विज्ञान** आदि अनेक सदृश अर्थ सूचक व्यावहारिक शब्दों का रूप दृग्गोचर होते हैं। कारण अनेक क्षेत्रों में इन्हीं शब्दों में से अनेक शब्दों को एक ही अर्थ में प्रयोग किया जाता है अथवा इनके बीच में विद्यमान सूक्ष्म भिन्नताओं को उपेक्षा करके अन्य रूप में उपस्थापन किया जाता है।

उदाहरणस्वरूप न्यायसूत्र में "बुद्धिरूपलब्धि ज्ञानमित्यनर्थान्तरम्"**(न्याय सूत्र-1-1-15**) स्वीकार करके ज्ञान शब्द को एक व्यापक अर्थ में बुद्धि एवं उपलब्धि से अभिन्न दर्शाया गया है। वैसे ही न्याय कंदली में"बुद्धिरुपलब्धिज्ञानं प्रत्ययं इति पर्यायः"**(न्याय कंदली- विजयनगरम् संस्करण-पृ-171**) से बुद्धि या उपलब्धि अथवा ज्ञान को प्रत्यय के रूप में स्वीकार किया गया है । कुछ दार्शनिक आलोचना में अनुभव को भी ज्ञान अर्थ में व्यवहार किए हैं जैसे "तद्वति तत् प्रकारकानुभवो यथार्थः"**(न्याय वार्तिक तात्पर्यटीका-5-21).** अद्वैतदर्शन में अपरोक्ष अनुभूति को श्रेष्ठ या दिव्य ज्ञान रूप में स्वीकार करने का दृष्टांत है। भ्रम एवं मिथ्या प्रत्यय का विश्लेषण करते हुए निर्मित विभिन्न ज्ञान मिमांसीय मतवादों **'ख्यातिवाद'** के रुप में भारतीय परंपरा में सुपरचित है। यहाँ **'ख्याति'** शब्द का व्यवहार सामान्यतः भ्रम अथवा मिथ्या उपलब्धि के संदर्भ में प्रयोग होते

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 1 July 2020

हुए भी इस शब्द का मौलिक अर्थ 'ज्ञान' के रुप में स्वीकार किया गया है।एवं मिथ्या उपलब्धि भी एक प्रकार की उपलब्धि है अतः इस को भी ज्ञान पदवाच्य ग्रहण किया गया है।प्रभाकर- मिमांसकों ने साधारण अर्थ में स्वीकृत भ्रम को संपूर्ण मिथ्या के रुप में स्वीकार न करके 'अविवेक ख्याति' अथवा 'असंपूर्ण ज्ञान' के रुप में स्वीकार किया है। **'ज्ञान'** एवं **'विज्ञान'** को एकार्थ बोधक के रूप में ग्रहण करके रामानुजवादियो ने **"यथार्थं सर्वविज्ञानम् इति वेदविदां मतम्"(** https://sites.google.com/site/shriibhaashyam/**)**सिद्धांत का उपस्थापन किए हैं।

उपर्युक्त चर्चा से यह स्पष्ट होता है कि भारतीय दार्शनिक परंपरा में ज्ञान शब्द का व्यवहार व्यापक अर्थ में हुआ है। एवं इस हेतु मिथ्या ज्ञान, अज्ञान अथवा असंपूर्ण ज्ञान, एवं सर्वोपरि जिस किसी भी प्रकार की उपलब्धि को ज्ञान के रूप में अभिहित किया गया है। योग सूत्र में समस्त संज्ञानात्मक चेतना प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा एवं स्मृति आदि पांच प्रकारों मे प्रमाणित किया गया है**(योग सूत्र-1.8-10)**। इस प्रसंग में संशयात्मिका अवस्था भी ज्ञान अंतर्गत है ऐसा मत प्रकट किया गया है। सामान्य अर्थों में ज्ञान संशय, विपर्यय, अज्ञान, निद्रा आदि को ना समझाने पर भी दर्शनिक परिप्रेक्ष्य में यह व्यापक अर्थ में व्यवहृत होकर जिस किसी भी संज्ञानात्मक चित्तीय अवस्था को सूचित करता है। इस दृष्टि से यथार्थ अथवा सद्ज्ञान को सतर्कता के साथ ज्ञान से अलग करके स्वतंत्र शब्द का व्यवहार किया गया है। अर्थात यथार्थ ज्ञान को दर्शनिक परिप्रेक्ष में 'प्रमा' नाम से अभिहित किया गया है। प्रमा शब्द की व्युत्पत्ति प्र+ मा(सत+ ज्ञान), एवं जो प्रमा नहीं है, उसको अप्रमा कहां गया है। कुछ क्षेत्र में सद्ज्ञान को प्रमा ना कहकर प्रमाण कहने का भी दृष्टांत है। परंतु

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 1 July 2020

सामान्यतः 'प्रमा' को यथार्थ ज्ञान सूचक के रूप में ग्रहण करके प्रमाण को यथार्थ ज्ञान प्राप्ति में माध्यम के रूप में स्वीकार किया गया है। किन माध्यमों के द्वारा यथार्थ ज्ञान संभव है इस संदर्भ में भारतीय दार्शनिकों में युक्ति आधारित मतभेद है । परंतु प्रमा एवं प्रमाण के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि जो व्यक्ति प्रमाण की सहायता से प्रमा की अधिकारी उसको (व्यक्ति) प्रमाण मानकर जिस विषय में प्रमा संभव होता है उसको प्रमेय के नाम से नामित किया गया है. प्रमाता ज्ञाता होता है परंतु ज्ञाता प्रमाता न होने की पूर्ण संभावना है। उसी प्रकार ज्ञेय एवं प्रमेय में भी भेद को परिलक्षित किया जा सकता है ।

सांख्यशास्त्रीय ज्ञान मिमांसा

पुर्व से यह स्पष्ट है कि संख्या दर्शन अनुसार प्रकृति एवं पुरुष नामक दो तत्वों की स्थिति तात्विक दृष्टिकोण से स्वीकृत है । प्रकृति क्रियाशील फिर भी जड़ और अचेतन होने की वजह से यह ज्ञान की अधिकारी होना संपूर्ण असंभव है। इसी दृष्टि से प्रकृति से निसृत महत् आदि अन्य समस्त व्यक्त विषय भी जड़ एवं अचेतन हैं अतः वे भी ज्ञाता पदवाच्य नहीं हो सकते ।अन्य पक्ष में पुरुष संपूर्ण रूप से एवं चैतन्य स्वीकृत होते हुए भी समस्त जागतिक परिवेश से पूर्णरूपेण पृथक अथवा असंग रहने के दृष्टि से किसी भी प्रकार के अनुभवों का विषयी होना संभव नहीं है। इस परिस्थिति में पुरुष ज्ञाता अथवा प्रमाण होने के लिए प्रकृति अर्थात विषय परिवेश के साथ वास्तव रूप से सम्पर्कित अथवा संबंधित होना आवश्यक । परंतु पुरुष एवं प्रकृति संपूर्ण रूप से परस्पर से पृथक होने की दृष्टि से इनके के मध्य वास्तव संपर्क असंभव ऐसा सांख्य दार्शनिकों का मत ।असंग,

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 1 July 2020

निर्लिप्त एवं संपूर्ण उदासीन पुरुष ज्ञाता के रूप में स्वीकार करने में भी बाधा उपज रही है। इस परिस्थिति में सांख्य शास्त्र के अनुसार **ज्ञाता** कौन ? एवं **ज्ञेय** अर्थात ज्ञान का विषय वस्तु क्या ? है इत्यादि प्रश्नों की आलोचना आवश्यक है।

उपरोक्त प्रश्नों के समाधान के उद्देश्य से यह मत स्पष्ट किआ गया है कि सांख्य दर्शन में केवल पुरुष अथवा केवल प्रकृति या महत्" ज्ञाता" पदवाच्य नहीं है फिर भी पुरुष एवं प्रकृति से अभिव्यक्त महत् या बुद्धि के मध्य एक प्रकार प्रतीयमान सानिध्य की वजह से जीव अथवा जीवात्मा की सृष्टि जिस को जगतिक विष्ययादिओं को अनुभव करने के लिए सक्षम माना जाता है । शुद्ध पुरुष महत/बुद्धि के ऊपर प्रतिबिंबित होकर जीवात्मा की सृष्टि। अन्य रुप में कहा जा सकता है कि चैतन्य पुरुष का प्रतिफलन की वजह से जीव चैतन्य प्राप्त होकर विभिन्न जागतिक विषयों को जानने में सक्षम होता है।यहाँ यह स्पष्ट है कि जीव निश्चित रूप में शुद्ध पुरुष से पृथक है।एवं जीव की सृष्टि की बजह से महत (जो प्रकृति से व्यक्त होने से अचेतन) को चैतन्य प्राप्त होने की धारणा बनती है और पुरुष(जो संपूर्ण निष्क्रिय) का सक्रिय होने की धारणा निर्माण होती है ।इसी सन्दर्भ में **ईश्वरकृष्ण** की निम्नोक्ति प्रणिधान योग्य

तस्मात् तत् संयोगात् अचेतनं चेतनावत् इव लिङ्गं।
गुणकर्तुत्वे च तथा कर्त्तेव भवत्युदासीनः।।
(20,सांख्यकारिका)

अर्थात पुरुष एवं बुद्धि के संयोग से अचेतन बुद्धि चेतन के रूप में

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 1 July 2020

प्रतीयमान होता है । तथा वास्तव में उदासीन पुरुष सक्रिय रूप में प्रतीयमान होता है । अर्थात जीवात्मा वास्तव संपर्क से सृष्ट न होकर प्रतीयमान संपर्क से सृष्ट होने के कारण सत्ज्ञान अर्थात् तत्व ज्ञान की अधिकारी होना असंभव। क्यों की बुद्धि एवं शुद्ध पुरुष के मध्य प्रतिविंब जनित विशृंखला के कारण जीव सृष्ट होकर स्वयं को स्वतंत्र एवं स्वाधीन मान लेता है। परंतु वास्तव में जीव की कोई स्वतंत्र सत्ता असंभव है। जीव का चेतनत्व प्रतिबिंब जनित। अतः उस का तथाकथित ज्ञान आहरण भी अविवेक जनित । इसी तर्क आधार से सांख्य दार्शनिकों ने अलौकिक ज्ञान को तत्व ज्ञान से पृथक करते हैं । एवं तत्वज्ञान का अभ्युदय से जीव का स्वयं को स्वतंत्र तथा स्वाधीन विचार करने का अवकाश नहीं रहता है तथा पूर्वोक्त प्रतिविंब पुनः विवेक जनित आज्ञान का सूत्रपात नही कर पाता है । अर्थात यहाँ ज्ञाता ज्ञेय और ज्ञान के मध्य भिन्नता का अवकाश नहीं है । सांख्य शास्त्रज्ञों के मत में यद्यपि तत्वज्ञान की दृष्टी से लौकिक ज्ञान अविवेक जनित तथापि इसको साधारण तार्किकता दृष्टी से **सत्ज्ञान(प्रमा)** एवं **असत्ज्ञान**(अप्रमा) के रूप में विभक्त किया जा सकता है ।

उपर्युक्त संदर्भ में सांख्यदार्शनिकों ने शुद्ध चैतन्य अथवा ज्ञान-स्वरूप एवं वृत्ति ज्ञान अथवा प्रतीयमनाता की बजह से निर्मित ज्ञान के मध्य विभेद स्पष्ट किए हैं । शुद्ध चैतन्य स्वरुप पुरुष सर्व प्रकारक संबंधों से मुक्त इसलिए यह **ज्ञान स्वरुप** के रूप में स्वीकृत । अन्य पक्ष में पुरुष के प्रतिफलन से बुद्धि विकारयुक्त होकर निर्मित होने वाले ज्ञान को **वृत्ति ज्ञान** कहा जाता है । अतः शुद्ध चैतन्यनिश्चित रूप में बौद्धिक चेतना से भिन्न । तत्वज्ञान का अभ्युदय न होने तक जीवात्मा केवल विषयाकार वृत्ति

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 1 July 2020

सम्बन्ध में सचेतन रहता है और इसी वृत्ति की सहायता से बाह्यीक विषय अथवा अर्थ के संबंध में ज्ञान प्राप्त करता है। वृत्ति ज्ञान बुद्धि का धर्म है एवं शुद्ध पुरुष के साथ इसका कोई भी सम्बंन्ध नहीं है।

वृत्तिज्ञान - स्वयं ही स्वयं का प्रकाशक

इसी वृत्तिज्ञान की बजह से ज्ञेय वस्तु जीव अर्थात् ज्ञाता के समक्ष प्रकाशित होता है ।परंतु वृत्तिज्ञान स्वयं अन्य किसी की सहायतां से ज्ञाता के निकट प्रकाशित नहीं होता है । अतः वृत्तिज्ञान स्वयं ही स्वयं का प्रकाशक। ज्ञान स्वयं यदि स्वयं का प्रकाशक न होकर प्रकाशित होने केलिए अन्य ज्ञान के उपर निर्भर करता है तो वह द्वितीय ज्ञान भी अपना प्रकाश केलिए पूर्व नियमानुसार किसी तृतीय ज्ञान के उपर निर्भरशील होगा जो अनवस्था प्रसंग दोष को प्रतिष्ठित करेगा। इसलिए संख्या मत में विषय के प्रकाश के साथ साथ विषय सूचक चित्तवृत्ति अर्थात वृत्तिज्ञान भी प्रकाशित होता है। पूर्व में सांख्य दृष्टिकोण से शुद्ध चैतन्य पुरुष स्वयं प्रकाश्य के रुप में सूचीत हुआ है एवं यह शुद्ध चैतन्य पुरुष का बुद्धि के उपर प्रतिफलन से सृष्ट ज्ञान वृत्तिज्ञान भी स्वयं प्रकाश्य। इससे यह स्पष्ट अवधारणा बनाया जा सकता है कि ज्ञान सदैव स्वयं ज्ञात, एवं ज्ञेय वस्तु ज्ञान के द्वारा ज्ञात होता है।

उक्त आलोचना से यह स्पष्ट है कि जीवात्मा को लौकिकज्ञान केलिए तीन विषय आवश्यक है । प्रथमतः चैतन्याकार **महत् अथवा बुद्धि** की स्वीकार्यता ।द्वितीयतः

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 1 July 2020

वृत्तिद्वारा ही चैतन्य का सयोंग बाह्य विषय अथवा ज्ञेय वस्तु के साथ संभव के कारण **वृत्ति** की स्वीकार्यता । ज्ञेयवस्तु के साथ साक्षात् संबंध/संयोग न होकर वुत्ति द्वारा संभव संयोग को स्वीकार किया गया है। अतः तृतीयतः ज्ञान के लिए ज्ञेय वास्तु की स्थिति अपरिहार्य । अर्थात संक्षेप में कहा जा सकता है कि वृत्ति ज्ञान के द्वारा विषय की प्रकाश्यता क सांख्य दर्शन ने स्वीकार किया है ।

सांख्य दर्शन का विकाशवाद सिद्धान्तानुसार बुद्धि, अहंकार, पंचज्ञानेंद्रिय, पंचकर्मेंद्रिय पृथक पृथक तत्व के रूप में स्वीकार किया है । सांख्यशास्त्रीय ज्ञान मिमांसा दृष्टि से उपर्युक्त तत्त्वों की विवचना महत्वपूर्ण है। ज्ञान लाभ केलिए बुद्धि की आवश्यकता के वारे में पूर्व में सूचीत किया गया है । अहंकार अहंभाव से प्रकाशित होकर ज्ञानलाभ केलिए ज्ञाता की भित्ति को सुदृढ़ बनाता है । मन किसीभी विषय ज्ञान की अवधारणा हेतु अत्यंत आवश्यक वस्तु है । इनके अलावा पंच ज्ञानेन्द्रिय एवं पंच कर्मेन्द्रिय विषय ज्ञान केलिए विशेष रुप से सहायक है । किसी भी साधारण ज्ञान का अभ्युदय के समय प्रथमतः विषय इन्द्रियगत संकारोंको मन एक प्रत्यक्ष वस्तु के रूप में संयोजित करता है । एवं उसके पश्चात अहंकार उस प्रत्यक्ष वस्तु को जीवात्मा के समीप समक्ष प्रेषित करता है एवं जिसकी बजह से बुद्धि उपर्युक्त वस्तु के संबंध में एक अवधारणा निर्माण करता है ।

इंद्रियों के द्वारा वस्तु के साथ सम्बन्ध हो अथवा अनुमान भित्तिक लिंग/प्रतीक ज्ञान के द्वारा हो प्रथमतः ज्ञात होने वाला विषय के आकार से स्वरूपित होकर बुद्धि-वृत्ति का संभव होता है । इससे यह स्पष्ट अवधारणा बन रही है कि जड़ प्रकृति से अभिव्यक्त बुद्धि एवं दश इंद्रियाँदि समस्त

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 1 July 2020

तत्त्व जड होते हुए भी उनमें पुरुष का प्रतिबिंब से चेतनत्व के कारण समस्त साधारण ज्ञान आहरण प्रक्रिया में वे सभी विशेष रूप से कार्यकारी होते हैं। प्रकृत्ति से विकसित अन्य समस्त तत्त्व यथा पंच तन्मात्रा एवं पंच महाभूत संपूर्ण रुप से भूतादिमूलक रुप में स्वीकृत होते हुए भी पुरुष की सान्निध्य से समस्त मानसिक एवं चित्तीय व्यापार के लिए कार्य करते हैँ

प्रकृति को सत्त्व, रज तम आदि त्रिगुणों की साम्यावस्था के रुप में सांख्य दार्शनिक स्वीकार करते हैं। सत्त्व- प्रकाशात्मक, रज- क्रियात्मक एवं तम- निष्क्रियात्मक के रुप में गुण त्रय का स्वरुप वर्णन किया जाता है।लौकिक ज्ञान की उत्पत्ति के विषय मे त्रिगुणों की भूमिका अत्यंत महत्त्वपूर्ण। किसी भी प्रकार का ज्ञान के निर्माण के समय तीनों गुण स्व स्वरुप के अनुसार कार्य करते है। जैसे सत्त्व गुण विषय को अनुभव हेतु प्रकाशक के रुप में कार्य करते समय रजो गुण क्रियात्मक रुप में अंतः करण के समक्ष विषय को आकर्षणीय रुप में उपस्थापित करने में सहायता करते हैं एवं तमो गुण निष्क्रिय सूचक होने के कारण विषय को स्थुल रुप में अवधारणा निर्माण कराने में सहायक होते हैं। पुरुष चैतन्य स्वरुप एवं संपूर्ण रुप में त्रिगुणातीत होने की दृष्टि से प्रत्यक्ष, धारणा, चिंतन,संवेग, भावावेश एवं इच्छा आदि क्रियाएँ मानसिक अवस्था से अतीत। परंतु त्रिगुणों के साथ विभिन्न मानसिक अवस्था के संबंध के कारण इनको यांत्रिकधारा के रुप में अभिहित किया जाना स्वाभाविक है। अर्थात साधारण अर्थ में जीस प्रक्रिया को मानसिक प्रक्रिया के रुप में स्वीकार किया जाता है सांख्य दृष्टिकोण से उन क्रियाओं को यांत्रिक अथवा भौतिक के रुप में अर्थ करना समीचीन होगा।

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 1 July 2020

निष्कर्ष

इस प्रकार विचार किया जाए तो सांख्य दर्शन में ज्ञान मीमांसीय आलोचना विशेष व्यापक। ज्ञान के संबंध में आलोचना के समय सांख्यतत्त्वविदों के द्वारा सतर्कता के साथ शुद्ध चैतन्य अथवा ज्ञान स्वरुप एवं वृत्ति ज्ञान के मध्य पार्थक्य को उपस्थापित किए हैं । ज्ञान ,प्रमा, अप्रमा, प्रमाण एवं उनके संवंध आदि ज्ञान मीमांसीय महत्त्वपूर्ण प्रसंगो के उपर विस्तृत आलोचना सांख्यदार्शनिक विचारधारा की गांभीर्यता के वारे में स्पष्ट करता है। सांख्य मत में एक बाह्य विषय- सामान्य, समस्त जीव का ज्ञेय के रूप में स्वीकृत हो कर भी प्रत्येक जीव उस बाह्य ज्ञेय वस्तु को अपने अपने दृष्टिकोण से जानने की संवनाभाओं को स्वीकार किया गया है । परंतु वह स्वदृष्टिकोण-भित्तिक ज्ञान जीव द्वारा निर्मित है, स्वीकार न करके वह बाह्य ज्ञेय वस्तु-भित्तिक है ऐसा स्वीकार किया गया है। अर्थात् साधारण रुप में स्वीकृत मिथ्याज्ञान पूर्णरुप में प्रत्ययात्मक न हो कर वस्तुपरक विचार करना अधिक उपयुक्त होगा।

संदर्भ ग्रंथः

- Hiriyanna, M. (2000). Outline Of Indian Philosophy. MLBD, New Delhi
- Moore , Rdhakrishnan.S. (1957). A source book on Indian Philosophy. Princeton University
- आचार्य, स.(1997).एकादशोपनिषद्. संस्कारप्रकाशन,दिल्ली
- आचार्य,श्री.(1963),न्यायकंदली. वाराणासेय संस्कृतविश्वविद्यालय,वाराणासी
- आपटे, वा.शि(1987),संस्कृत-हिदी-कोश.मोतीलाल बनारसी दास,दील्ली
- उपाध्याय वलदेव,(1976),भारतीयदर्शनम्.चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणासी

Copyright © 2020 Authors

ISSN: 2278-4632
Vol-10 Issue-7 No. 1 July 2020

- ऋषि,उ. (Ed).(1978). सर्वदर्शन संग्रह. चौखम्बा विद्या भवन, वाराणासी
- त्रिपाठी,र(Ed).(2007).साख्यकारिका.चौखम्बा कृष्णदास अकादमी,वाराणसी
- पाण्डेय,ग(Ed).(2009).सांख्यप्रवचनभाष्यम्. चौखम्बा संस्कृतसंस्थानम्,वाराणसी
- महर्षि, गौ.(1920), न्याय सूत्र. चौखम्बा संस्कृत सीरीज,वाराणसी
- माधवाचार्य, (2005).सर्वदर्शन संग्रह. चौखम्बा ओरियन्टालिया, वाराणासी
- मिश्र,वा.(1925),न्यायवार्तिक तात्पर्यट्टिका.चौखम्बा संस्कृत सीरीज,वाराणसी
- मिश्र,वा.(2009).सांख्यतत्वकौमूदी. चौखम्बा संस्कृतसंस्थानम्,वाराणसी
- स्वामी,श्री.(1995).पातञ्जलयोगदर्शनम्. चौखम्बा संस्कृतसंस्थानम्,वाराणसी
- shriibhaaShyam. https://sites.google.com/site/shriibhaashyam/

Copyright © 2020 Authors